International Journal of History 2020; 2(2): 174-176

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
IJH 2020; 2(2): 174-176
Received: 26-06-2020
Accepted: 28-07-2020

कुमारी रीता
शोध छात्रा, विश्वविद्यालय
इतिहास विभाग, ल. ना. मि. वि.,
दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
कुमारी रीता
शोध छात्रा, विश्वविद्यालय
इतिहास विभाग, ल. ना. मि. वि.,
दरभंगा, बिहार, भारत

भारत में समकालीन सामाजिक परिवेश और नारी

कुमारी रीता

सारांश
जिस समय बौद्ध धर्म का आविर्भाव हो रहा था उस समय की सामाजिक अवस्था निन्दनीय थी। बौद्ध धर्म के आविर्भाव के पश्चात् प्राचीन भारतीय चिंतन परम्परा की नींव हिल गयी। बुद्ध से पहले स्त्रियों की सामाजिक स्थिति प्राचीन धर्माधीन थी जो उन्हें मुख्य सामाजिक अथवा राष्ट्रीय धारा से अलग रखती थी। बुद्ध ने अपने चिंतन से स्त्रियों की दशा सुधारने का काम किया। यह धर्म निरीश्वरवादी था।

मुख्य शब्दः समकालीन सामाजिक परिवेश और नारी

प्रस्तावना
बुद्ध, ने वर्ण अथवा जाति प्रथा का खंडन करते हुए मठों को स्थापित किया। यह वह समय था जब भारत में सबसे पहले उस धर्म की नींव रखी गयी जो धर्मशास्त्रों के आदेश पर नहीं चलता था। इस धर्म ने स्त्रियों को धार्मिक व्यवस्था में नियमित प्रवेश की अनुमति दी। बौद्ध धर्म में व्यापारियों शिल्पियों, सौदागरों और विदेशी अधिवासियों जैसे सामाजिक उपेक्षा के शिकार वर्गों को समर्थन और उचित स्थान दिया गया है। बुद्ध ने राजा के कर्त्तव्य का निर्धारण करते हुए कहा राजा का मूल कर्त्तव्य है धर्म की रक्षा करना। यह धर्म तत्कालीन धर्म नहीं था जो वर्ण व्यवस्था और धर्मशास्त्रों पर आधारित नहीं हों। राजा उस धम्म (धर्म) की रक्षा करेगा जो लोककल्याणकारी होगा। इसका मतलब यह था कि देश का कानून निर्धारित करने का अधिकार स्वयं राजा को होना चाहिए। इसके पहले राजा को कानून का संरक्षक मात्र माना जाता था, निर्माता नहीं। इस तरह बौद्ध धर्म के उदय से भारतीय चिंतन के इतिहास में विधि निर्माण के विचार का सूत्रपात हुआ। [1]

उस समय प्रव्रजित भिक्षु संघ में अनेक कुलीन जन शामिल हो गये थे। उन कुलीन जनों की पत्नियों ने प्रव्रजित होकर भिक्षुणियाँ बनने की इच्छा प्रकट की। भिक्षुणियाँ बनने की इच्छा रखनेवाली उन स्त्रियों ने महात्मा बुद्ध की मौसी और दाई प्रजापति गौतमी के नेतृत्व में भगवान बुद्ध से याचना की कि उन्हें प्रव्रजित होकर भिक्षुणी–संघ में शामिल हो जाने की अनुमति दें। भगवान बुद्ध की जो मान्यताएँ थीं उसके अनुसार वे उन स्त्रियों के संघ–प्रवेश पर रोक नहीं लगा सकते थे। पर उन्हें बदनामी का डर तो था। यही कारण था कि उन्होंने प्रजापति गौतम को सलाह दी कि वे श्वेत वस्त्र धारण करके उपासिका बन जाएँ और अपना जीवन–यापन पवित्र ढंग से करें। बुद्ध की इस सलाह से गौतमी को संतुष्टि नहीं हुई। फलस्वरूप गौतमी ने भिक्षुणी बनने आयीं स्त्रियों को कहा कि वे सब सिर के बाल मुण्डा कर, हाथों में मिट्टी के भिक्षा पात्र लेकर बुद्ध के पास चलें। सभी स्त्रियाँ जब ऐसा करके भगवान बुद्ध के पास पहुंची तो बुद्ध के नजदीकी महास्थविर आनन्द को उन सबकी निष्ठा ने प्रभावित किया। उन्होंने उन स्त्रियों को भिक्षुणी के रूप में स्वीकार कर लेने का अनुरोध बुद्ध से किया। इस पर भगवान बुद्ध ने संघ में स्त्री और पुरूष को समानता का अधिकार देते हुए उनके प्रवेश की अनुमति दे दी।

उस समय की स्त्रियों की बुरी सामाजिक दशा को ध्यान में रखते हुए बुद्ध का यह निर्णय बड़ा साहसिक था। प्राचीन भारत के पूजा–पाठ में इन्द्रिय लोलुपता को विशेष स्थान प्राप्त था। देवताओं के राजा और वैदिक देवता इन्द्र, सोम रस के पान के अभ्यासी थे। अगर हल्की भाषा में कहा जाए तो नशाखोर थे। नशेरी के साथ–साथ व्यभिचारी भी थे। उस समय होनेवाले पौण्डरीक यज्ञ में लैंगिक प्रक्रिया की पूजा और आराधना की जाती थी। इसी पूजन को आगे चलकर महादेव–पूजन के रूप में पुरूष–लिंग की पूजा के रूप में मान्यता मिली। उस समय अपने आपको भगवान मानने वाले पुरोहित लम्पट हुआ करते थे। वे विलासी जीवन व्यतीत किया करते थे। उस समय किसी विशेष धर्मोत्सव की अवधि में पुरोहितों को किसी अन्य की स्त्री से दुराचार करने की अनुमति नहीं थीं किन्तु अगर वासना के अभिभूत होकर वे ऐसा कर भी लेते थे तो उनके लिए अत्यंत आसान प्रायश्चित अथवा पाप–मुक्ति का उपाय था कि वे वरूण और मित्र पर दूध की धार गिरा दें। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय की धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियाँ केवल भोग्या थीं। उन्हें ओछी नजर से देखा जाता था। अनभिरती जातक कथा की एक पुरानी गाथा के अनुसार

स्त्रियाँ पानी की प्याउ की तरह सभी के उपयोग की वस्तु है। जो बुद्धिमान होते हैं वे इस व्यवस्था पर आक्रोशित नहीं होते। महाभारत के आदि पर्व के अनुसार प्राचीन समय में स्त्रियाँ घरों में बन्दी नहीं रहती थी। वे अपने पतियों और रिश्तेदारों की आश्रिता नहीं होती थीं। स्वच्छंद विचरण उनका स्वभाव था। वे पतियों के प्रति समर्पित नहीं होती थीं। महान ऋषियों ने स्त्री के इस जीवन को अनुकरणीय माना है। उत्तर कुरू के निवासियों में आज भी यह परंपरा स्थापित है। इस परंपरा को प्राचीनता और धर्म का समर्थन प्राप्त है। उद्योग–पर्व में कहा गया है कि उच्च कुलोत्पन्न, शीलसम्पन्न घरों में लड़की का जन्म दुर्भाग्यपूर्ण है। उनके कारण उनका मातृकुल, पितृकुल और पतिकुल निन्दित होता है। अनुशासन पर्व में विदेह नरेश जनक की पौत्री सुकृति के अनुसार स्त्रियाँ जीवन में स्वतंत्रता का उपयोग करने के योग्य नहीं होती। उच्च कुलोत्पन्न, सौंदर्य–युक्त हाने के बाद भी उन्हें संरक्षण की आवश्यकता है। स्त्रियाँ मर्यादा के उल्लंधन के लिए लालायित रहती हैं। इसीलिए स्त्री से बढ़कर पापिनी दूसरी अन्य नहीं है। वे उस व्यक्ति को सबसे ज्यादा पसंद करती हैं जो उनके साथ संभोग करता है। स्त्रियाँ वह मंत्र है जिनसे मनुष्य का जीवन नष्ट हो जाता है। लड़की का जन्म जिस घर में हो जाये वह उसी दिन से दंडित होना शुरू हो जाता है। यदि कोई प्रसूता किसी लड़की को जन्म देती है तो वह एक महीने और लड़के के जन्म पर बीस दिनों तक अस्पृश्य बनी रहती है।

बौद्धधर्म का उदय इसी निन्दनीय सामाजिक व्यवस्था के विरोध में हुआ। स्त्री, प्रेम, धैर्य और बलिदान की प्रतिमूर्ति होती हैं। वह पुत्री, भगिनी, पत्नी तथा माँ स्वरूपा होकर अपने सामाजिक एवं धार्मिक कर्तव्यों का पालन करती है। वैदिक साहित्य इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि आर्य लोग स्त्रियों का सम्मान बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक करते थे। नारी, गृहस्थ धर्म के पालन में प्रधानता रखती थीं। विवाह का प्रयोजन धार्मिक और वंश परंपरा की रक्षा करना था। वै पुरूष के साथ रहकर धर्मानुष्ठान [2] और यज्ञ संपादन [3] करती थीं। पुत्र और पुत्री दोनों का उपनयन संस्कार [4] आठ वर्ष की अवस्था में होता था। वे वेदों का अध्ययन अपने पिता, चाचा, भाई आदि के पास रहकर करती थीं। उनके वैवाहिक जीवन की सुव्यवस्था के लिए शिक्षा आवश्यक थी। [5] वे कवयियी और शुद्ध आचरण के कारण ऋषि–भाव को प्राप्त रहती थीं। उस समय लोपामुद्रा [6] अपाला [7], घोषा [8] आदि विख्यात ऋषिकायें थीं। अध्ययन और अध्यापन करने वाली अविवाहित स्त्रियों में गार्गी, वाचवनवी, सुलभा, मैत्रीय आदि विदुषियों के नाम उल्लेखनीय हैं। उन्हें जन्म से मृत्यु पर्यन्त पुरूष संरक्षण में रहना होता था। नारियों के स्वतंत्र विचार को उचित नहीं समझा जाता था। वे विवाह पूर्व पिता, विवाहोपरांत पति और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन होती थीं। मनुस्मृति के अनुसार–

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षति स्थाविरे पुत्राः न स्त्री स्वतन्त्र्यमहति।। [9]

वैदिक साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गृहिणी, माता, और सहचरी के रूप में स्त्रियों की भूमिकाएँ महत्वपूर्ण होती थी। [10] ऋग्वेद में नारी को 'जद्भायेदस्तं' (स्त्री ही घर है) कहकर प्रतिष्ठा दी गयी है। [11] इस युग की पत्नियाँय पतियों की आवश्यकतापूर्ति के सुन्दर वस्त्र धारण करती थीं। [12] पूरे घर के ऊपर अथवा परिवार के सभी सदस्यों पर गहिणी होने के कारण स्त्रियाँ शासन भी करती थीं। [13] ऋग्वेदानुसार स्त्रियाँ प्रेम, तप और त्याग की प्रतिमूर्ति हैं जो अनेक कष्टों को सहते हुए अपनी संतानों का पालन करती हैं। सूर्या और सावित्री के विवाह के सम्बन्ध में स्त्री के मातृ–पद की कामना इस प्रकार की गई है– पति अपनी नवविवाहिता पत्नी के बारे में कहता है 'अग्नि ने मुझे यह पत्नी, पुत्र, धन आदि प्रदान किया है। [14] पत्नी को 'वीरसू' अर्थात् वीर संतान को जन्म देने वाली भी कहा गया है। [15]

स्त्री और पुरूष जीवन रूपी गाड़ी की दो धूरी है। स्त्री पुरूष की सहचरी है। स्त्री अपने प्रेम की छाया और मनुहार से पुरूष के दिन भर की तकलीफ का शमन करती है। इसका प्रमाण हम बौद्ध साहित्य में भी देख सकते हैं। [16] ऋग्वेदानुसार विवाह का उद्देश्य सुख और गृहस्थाश्रम के सभी कर्तव्यों का साथ–साथ निर्वाह करना है। विश्वदेव से प्रार्थना करते हुए एक दम्पति कहता है कि हम दोनों के हृदय प्रीति से जोड़ दें। [17]

जब हम उत्तर वैदिक काल का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि नारी का सामाजिक स्तर धीरे–धीरे गिरता गया है। तपस्वीगण नारी को बाधा मानते हैं। फलस्वरूप नारी को नीच दृष्टि से देखा जाने लगा। कन्याओं को दुख का कारण समझा जाने लगा। [18] स्त्रियों के वैवाहिक नियम महाकाव्य काल तक सही थे। वह अविवाहित रहकर पच्चीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई विद्याध्ययन करती थीं। ऐतरेय ब्राह्मण में जिस कुमारी गंर्धव गृहीता [19] की चर्चा है वह शास्त्रार्थ निपुण विदुषी स्त्री थी। एक ओर जहाँ वैदिक साहित्य में स्त्रियाँ प्रशंसा के योग्य मानी गयीं हैं वहीं दूसरी ओर तत्कालीन समाज के कुछ लोग उसकी निन्दा भी करते हैं। ऋग्वेद [20] और शतपथ ब्राह्मण में स्त्रियों को धोखेबाज और मक्कार [21] बताते हुए उसे मित्रता का बाधक तत्व माना गया है। एक ओर जहाँ स्त्रियों के पुनर्विवाह और नियोग को वैदिक युग का समर्थन प्राप्त है वहीं दूसरी ओर मनुस्मृति में इसका जोरदार विरोध किया गया है। [22] उस समय एक विधवा स्त्री को अपना संपूर्ण जीवन अकेले जीना पड़ता था। इससे सामाजिक संतुलन बिगड़ने लगा। लोग सती प्रथा का अनुसरण करने लगे। उस समय परदा प्रथा नहीं थी और स्त्रियाँ गोष्ठियों और शास्त्रार्थ में स्वतंत्रतापूर्वक भाग ले सकती थीं। वे विदुषी और सामाजिक तौर पर प्रतिष्ठित हुआ करती थीं। मनुस्मृति में ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'' [23] कहकर स्त्रियों को सम्मानित किया गया है।

परम्परागत रूप से चली आ रही वैदिक कालीन नारी की प्रतिष्ठा उत्तर वैदिक काल में सामाजिक आघात से नष्ट होने लगी। शारीरिक –शक्ति, आर्थिक भार वहन तथा परिवार–पालन में उसे अयोग्य समझा जाने लगा। कन्या का जन्म दुख का कारण समझा जाने लगा। लोगों में पुत्र की कामना सर्वोपरि रूप से रहती थी। बौद्ध साहित्य में भी पुत्र के जन्म पर आनन्दोत्सव मनाये जाने का उल्लेख मिलता है। पुत्र राजा का उत्तराधिकारी [24] होता था। धारणा यह थी कि पुत्र के द्वारा किये गये पिता के श्राद्ध–तर्पण आदि से उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इस प्रकार की सामाजिक और कर्मकांड की धारणा बौद्ध धर्म के विपरीत पड़ती थी। बौद्ध धर्म के अनुसार पुत्र के बिना भी पवित्र आचरण करके निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है। [25] गौतम बुद्ध का अवतरण जिस समय हुआ उस समय पर्याप्त सामाजिक और धार्मिक सुधार की आवश्यकता थी। उन्होंने यह सुधार अपनी तपस्या और साधना की बदौलत किया। नारी को श्रेष्ठता प्रदान करने का पूरा श्रेय महात्मा बुद्ध को ही है। [26] उन्होंने पुत्र और पुत्री में कोई अंतर नहीं माना है। महात्मा बुद्ध के अनुसार संतानहीनों द्वारा पुत्र और पुत्री, दोनों को ही गोद लेना कानून सम्मत है। पुत्री को गोद लेने की बात पहली बार बुद्ध द्वारा करना निश्चित ही एक सामाजिक और क्रांतिकारी परिवर्तन के संकेत हैं। बालिका सोमवती को एक गृहस्थ राजा ने गोद लिया था। [27] इसी प्रकार एक अन्य राजा ने भी काणा को गोद लिया था। [28] जब कोसलराज प्रसेनजित को यह पता चला कि उनकी रानी को पुत्री उत्पन्न हुई है तो वे बहुत दुःखी हुए। महात्मा बुद्ध ने उन्हें समझाते हुए कहा पुत्री, पुत्र से कहीं अच्छी सिद्धिदायक हो सकती है। पुत्री शीलवान, बुद्धिमान, प्रशासन में दक्ष और पुत्रों से अधिक पवित्र होती है। वह वीर और कुशल शासक पुत्र को जन्म दे सकती है। एक स्थान पर महासुवण्ण नामक गृहस्थ वृक्ष की अभ्यर्थना करता हुआ कहता है कि मुझे अगर पुत्र, पुत्री में से

कुछ भी प्राप्त हुआ तो मैं तुम्हारी पूजा करूँगा। [29] इस प्रकार एक और उदाहरण है कि जातक में ब्रह्मदत्त नामक व्यक्ति पुत्र अथवा पुत्री के लिए प्रार्थना करता है। बब्बरी [30] तथा इसिदानी [31] के प्रति उसके माता–पिता का प्रगाढ़ प्रेम तत्कालीन समाज में पुत्रियों की संतोषजनक प्रतिष्ठा को सिद्ध करता है। जातक में एक और उल्लेख मिलता है कि हमारे पास एश्वर्य है किन्तु पुत्री नहीं है। पुत्री, पुत्र के सामन ही लालन–पालन की अधिकारिणी होती थी। कन्या जन्म पर पुत्र जन्म के समान ही आनंद मनाया जाता था। अगर किसी गणिका को पुत्र होता तो वह उसे फेंक सकती थी अथवा फेंक ही देती थी किन्तु पुत्री के साथ वह ऐसा कदापि नहीं करती थी। वही पुत्रियाँ बड़ी होकर भिक्षुणियाँ बनती थीं और अर्हत पद की प्राप्ति करती थी।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन यह स्पष्ट करता है कि भारत के प्राचीन समाज में कन्या अपमान की पात्रा नहीं समझी जाती थी किन्तु पुत्र की सामाजिक और पारिवारिक हैसियत उसे प्राप्त नहीं थी। कन्या के पिता उचित घर–वर नहीं खोज पाने के कारण चिन्तित रहते थे। संयुक्त निकाय में एक पिता अधिक पुत्रियाँ पैदा हाने के कारण अपने भाग्य कोसता नजर आता है। स्त्रियाँ विधवा होने पर पिता के घर के लिए भी संताप का कारण बनती थी। विवाह के लिए कन्या के पिता को बहुत अधिक धन, दहेज के रूप में देना पड़ता था। देवाह न हो पाने की स्थिति में कन्या का भार पिता को ही वहन करना पड़ता था किन्तु उसे पैतृक सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त था।

संदर्भ

1. भारतीय राजनीति विचारक – डॉ. ओम प्रकाश गाबा, पृ.– 20
2. ऋग्वेद – 7, 31, 508, 1, 105, 02
3. वही – 1, 131, 3, 5, 43, 15
4. गोभिल गृह्यसूत्र – 11, 1, 19
5. वृहदारण्यक उपनिषद् – 6, 2, 7
6. ऋग्वेद – 1, 1, 79
7. वही – 6, 6, 1
8. वही – 7, 8, 9, 10, 39, 40
9. मनुस्मृति – 9, 2, 3; मजूमदार, आर.सी. – द वैदिक एज, पृ. – 394
10. वेदकालीन समाजय शिवदत्त ज्ञानी, पृ. – 151
11. ऋग्वेद – 3, 55, 4
12. वही – 1.122.2
13. वही – 10. 85. 46
14. वही – 10. 85. 81
15. वही – 10. 85. 44
16. वेदकालीन समाज – शिवदत्त ज्ञानी, पृ. – 157
17. ऋग्वेद – 10.85.47
18. मैत्रायणी संहिता – 3.6.3
19. ऐतरेय ब्राह्मण – 7.29
20. ऋग्वेद – 10.85.36
21. वही – 10.85.47
22. मैत्रायणी संहिता – 3.6.3
23. मनुस्मृति – 3.56.60
24. जातक – 1, पृ. 221
25. सामंजफल सुत्त – 1.1.2
26. द स्टेटस ऑफ वीमेन इन ऐन्शेन्ट इण्डिया – प्रो. इन्द्रा, पृ.– 215
27. धम्मपद टीका – श्लोक – 1; जातक 5.521, 528
28. वही – श्लोक 22
29. वही – श्लोक – 1; जातक – 5 ृ– 521, 528
30. थेरी – 33
31. वही – 405